बेझिन चरागाह
इवान तुर्गेनेव

बेझिन चारागाह

बेझिन चारागाह

इवान सेर्गेयेविच तुर्गनेव

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू

मूल्य : 12 रुपए

पहला भारतीय संस्करण 2004

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी - 68, निरालानगर

लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ

पुस्तक और इसके लेखक के बारे में

सच्चा साहित्य वही होता है जो हमें सभी मानवद्रोही और मानवद्वेषी प्रवृत्ति से नफ़रत करना सिखाता है, जो हमें समाज में व्याप्त हृदयहीनता, स्वार्थ, अत्याचार के प्रति चिंतित-परेशान होने की संवेदना, उनके कारणों की तलाश करने का विवेक और उनके विरुद्ध संघर्ष करने का साहस एवं नैतिक बल प्रदान करता है तथा जो हमें लगातार बेहतर मनुष्य बनने और भविष्य के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करता है।

जो भी महान साहित्यकार भविष्य के बारे में सोचते रहे हैं, उन्होंने बच्चों के बारे में भी जरूर सोचा है क्योंकि आने वाली दुनिया उन्हीं की है और उस दुनिया में, आज के बच्चे ही कल के नागरिक के रूप में अपने बाद की पीढ़ी के लिए दुनिया बनाने का काम करेंगे। दुनिया के अधिकांश चोटी के लेखकों ने बच्चों के लिए और बच्चों के बारे में लिखा है, तो यह अनायास नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप और रूस में जो महान लेखक यथार्थवादी (यानी समाज की नंगी सच्चाइयों को उघाड़ने वाला और उसकी आलोचना करने वाला), मानवतावादी (यानी उच्च मानवीय मूल्यों-आदर्शों से लैस, मानवता के बेहतर भविष्य के लिए चिन्तित) और जनतंत्रवादी (यानी सामन्ती कुलीनों के विशेषाधिकारों की आलोचना करने वाला और 'स्वतंत्रता-समानता-भाईचारा' के उसूलों को मानने वाला) साहित्य लिख रहे थे, उन सभी ने ख़ास तौर पर पूँजीवादी समाज में बच्चों की, और विशेष तौर पर ग़रीब-अनाथ बच्चों की दुर्दशा पर ज़रूर कुछ न कुछ लिखा और कुछ ने तो काफ़ी लिखा। इस मायने में तुर्गनेव, दोस्तोयेव्स्की, तोलस्तोय, चेख़ोव, मामिन-सिबिर्याक आदि रूसी लेखक यूरोपीय देशों के अपने समकालीन लेखकों से कुछ कदम आगे ही थे।

इवान सेर्गेयेविच तुर्गनेव का नाम उन विभूतियों में शामिल है, जो विश्व साहित्य को उन्नीसवीं शताब्दी के रूस की देन थे। 'पिता और पुत्र', 'कुलीन घराना', 'पूर्व बेला', 'रूदिन' आदि उनके उपन्यास विश्व के गौरव-ग्रंथों के कोष के अनुपम रत्न हैं। तुर्गनेव का जन्म 1883 में एक जागीरदार परिवार में हुआ था। भूदासों के प्रति अपनी जागीरदारनी माँ की कठोरता ने बालक तुर्गनेव के मन पर गहरी वेदनाभरी छाप छोड़ी। भूदास किसानों और उनके बच्चों के नारकीय जीवन को उन्होंने नज़दीक से देखा। 1852 में प्रकाशित अपनी पहली ही पुस्तक 'शिकारी के शब्दचित्र' में उन्होंने रूसी सामाजिक व्यवस्था की परोक्ष आलोचना की जिसके चलते उन्हें कुछ समय के क़ैद और फिर स्पास्कोये की अपनी जागीर में नज़रबंदी की सजा भी भुगतनी पड़ी। निरंकुश रूसी समाज में लिखने की आज़ादी पर पाबंदी से तंग तुर्गनेव 1862 में फ्रांस चले गये और अपनी मृत्यु तक वहीं रहे। उनकी मृत्यु 1883 में पेरिस में हुई।

बच्चों का स्वर सुन पाना, उनके जीवन का सच्चा चित्रण करना, उन्हे शिक्षा देने से पहले उन्हें समझने का यत्न करना–सभी रूसी लेखकों ने इस पक्ष का अनुसरण किया। लेव तोलस्तोय कहते थे : ''स्कूली छात्र भले ही नन्हें मानव हैं, लेकिन ऐसे मानव हैं जिनकी हमारे जैसी ही आवश्यकताएँ हैं और जो हमारे भाँति ही सोचते-विचारते हैं।'' रूसी बाल- साहित्य की शक्ति इस बात में निहित है कि बच्चों से बातचीत करते

हुए वह उन्हें पूरी गंभीरता से लेता है, अहमियत और आदर देता है।

बच्चों के प्रति अपने गंभीर रुख की ही बदौलत रूसी लेखक बाल-पुस्तकों की रचना में अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति समझते थे। इवान तुर्गनेव ने लिखा था : "बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकें लिखना अत्यन्त कठिन है। इसके लिए विषय का गंभीर एवं पूर्ण अध्ययन, मानव हृदय और विशेषतः बाल-हृदय का ज्ञान, सरल और स्पष्ट भाषा में, लीपापोती और फूहड़पन के बिना बात कहने की योग्यता तथा धीरज ही पर्याप्त नहीं है। यह सब तो होना ही चाहिए और इसके अतिरिक्त लेखक के नैतिक एवं सामाजिक विकास का उच्च स्तर होना भी नितान्त आवश्यक है।" यह अन्तिम शर्त- "नैतिक एवं सामाजिक विकास का उच्च स्तर"- विशेषतः महत्वपूर्ण है। बच्चों के लिए लिखने वाला नैतिक दृष्टि से अच्छा व्यक्ति और अपने देश और अपने देश की जनता से प्यार करने वाला व्यक्ति होना चाहिए।

इस मर्म को तुर्गनेव ने समझा और इसीलिए उन्होंने बच्चों के लिए भी उतना ही बढ़िया लिखा जितना कि बड़ों के लिए। उनकी कहानी 'मुमू' बाल-साहित्य की एक बेजोड़ रचना है। यह एक कुत्ते की कहानी है जिसे उसके मालिक भूदास जमादार गेरासिम को अपनी मालकिन के बेरहम हुक्म पर डुबाना पड़ा। लेव तोलस्तोय के अनुरोध पर तुर्गनेव ने 'बाल विश्राम' पत्रिका के लिए 'बटेर' कहानी लिखी। उन्होंने शार्ल पेरों की बाल-कथाओं का भी फ्रांसीसी से रूसी में अनुवाद किया और उनके लिए भूमिका लिखी।

'बेझिन चरागाह' कहानी तुर्गनेव के पहले संकलन 'शिकारी के शब्दचित्र' से ली गयी है। वैसे तो यह पुस्तक बड़ों के लिए थी, लेकिन इसकी कई कहानियों को बाल साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान मिला जिनमें 'बेझिन चरागाह' के अतिरिक्त 'बिर्यूक', 'ल्गोव' और 'गायक' जैसी कुछ और कहानियाँ शामिल हैं। 'शिकारी के शब्दचित्र' के प्रकाशन (1852) के समय तक तुर्गनेव का नाम बहुत कम लोगों ने ही सुना था। लेकिन इसके प्रकाशित होते ही उनकी ख्याति देशव्यापी हो गयी। रूसी साहित्य में यह पहली ऐसी कृति थी, जिसमे मध्य रूस के मौलिक सौन्दर्य–रई के खेतों, खेतों से लगे गाँवों, गन्दी सरायों, रौशन जंगलों, मंथर नदियों और खेतों के बीच से चलती चली गयी खुली सड़कों की छवि उतारी गयी थी। इन कहानियों के अधिकांश नायक भूदास किसान हैं–अनपढ़, किंतु सयाने, प्रतिभावान और साफ़ मन के लोग। यह कहानी अपने साथ पढ़ने वाले बच्चों को भी गर्मी की एक छोटी सी रात बिताने रूस के उस केन्द्रीय भाग में पहुँचा देगी जहाँ दक्षिण के वनहीन सपाट मैदान (स्तेपी) उत्तर के घने जंगलों से मिलते हैं और जहाँ काली मिट्टी वाले उपजाऊ खेत फैले हुए हैं।

इस कहानी में तुर्गनेव ने भूदास किसानों के विपन्न, अनपढ़ लेकिन निष्कपट और निर्दोष बच्चों के कठिन जीवन और खुशमिज़ाजी के साथ ही जन-किंवदन्तियों का काव्यमय वर्णन किया है। इन बच्चों के अंधविश्वासों में भी जो विस्मयकारी आकर्षण, सहजता और काव्यमयता है, वह उनके आसपास की प्रकृति जैसी ही है। इन बच्चों का जीवन कठिन है और असमय मृत्यु ही उनमें से कई का नसीब है, लेकिन अपने दिलों की नैसर्गिक सहजता की ताकत से ये बच्चे जीवन-रस को निचोड़ना जानते हैं। असहनीय जीवन- स्थितियों में भी उनके भीतर मौजूद जीवन्तता, मौलिकता और रचनात्मकता इसी का प्रमाण है।

बेझिन चारागाह
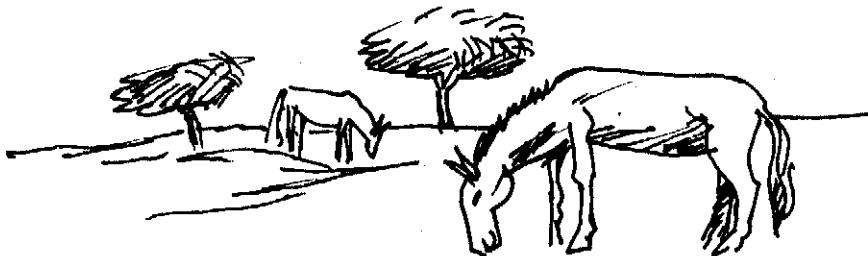
जुलाई का एक सुहाना दिन था। ऐसे दिन मौसम के उतार-चढ़ाव बीत चुकने पर ही अवतरित होते हैं। सुबह तड़के से ही आकाश स्वच्छ होता है। ऊषा आग सी नहीं दमक उठती, बस एक कोमल गुलाबी प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। न तो दमघोट सूखे के दिनों की भांति अग्निल, लाल-भभूका और न ही झंझा की पूर्ववेला जैसा धूमिल लौहित, अपितु दिव्य आभामय उज्जवल सूर्य बादल की लंबी, पतली पट्टी तले से हौले से उदय होता है, ताज़गी छिटकाता है और फिर उसकी लाल-नीली धुंध में समा जाता है। बादल की पट्टी के ऊपरी किनारे पर प्रकाश-सर्प बल खाते हैं, चांदी के वर्क से चमचमाते हैं... और फिर किरणों इठलाती हैं, आह्लदित प्रकाश पुंज भव्य पंखों पर ऊपर उठने लगता है। प्रायः दोपहर के समय आकाश में खूब ऊँचे गोल-गोल बादल छा जाते हैं–सुनहरे-सुरमई और दूधिया गोट में टंके। प्लावित नदी के वक्ष पर छितरे वे थिर द्वीपों से लगते हैं, गहरी पारदर्शी नीलवर्ण जलराशि का असीम विस्तार इन्हें पखारता है। दूर, आकाश के उतार में वे एक दूसरे के पास-पास आते जाते हैं, आपस में गुंथते हैं और उनके बीच नीलिमा अब नहीं दिखती; पर वे स्वयं भी आकाश जैसे ही आसमानी रंग के होते हैं–आलोक और गरमाहट में पगे हुए। क्षितिज का रंग हल्का नील कमल सा होता है और दिन भर नहीं बदलता, चारों ओर एक सा रहता है। कहीं भी कालिमा नहीं छाती, घटाएँ नहीं उमड़तीं। बस कहीं-कहीं ही आकाश धरती की ओर आसमानी हाथ बढ़ा देता है: यह झीनी बरखा है। साँझ घिरते न घिरते ये बादल विलीन हो जाते हैं। धुएँ जैसे अनिश्चित आकार के कालापन लिए उनके अंतिम

अवशेष डूबते सूरज के सामने रूई के गुलाबी ढेरों से उतर आते हैं। जिस शान्त भाव से सूर्य उदय हुआ था, उस शान्त भाव से वह अस्ताचल को चला जाता है। और वहाँ झुटपुटे की चादर ओढ़ती धरती के ऊपर कुछ देर तक लालिमा छाई रहती है। संभाल कर ले जाई जा रही दीप शिखा के भाँति साँझ का तारा टिमटिमा उठता है। ऐसे दिनों में सब रंग कोमल होते हैं, उजले किंतु चटकीले नहीं। चारों ओर हृदयस्पर्शी मृदुता का वातावरण होता है। ऐसे दिनों में गर्मी काफ़ी तेज़ होती है, कभी-कभी तो खेतों की ढुलवानों पर से भाप सी उठती दिखती है; पर हवा इस तपस को उड़ा ले जाती है और स्थिर मौसम के पक्के चिह्न–धूल के बगूले ऊँचे सफ़ेद सूतनों से खेतों को पार करते सड़कों पर उड़ते जाते हैं। स्वच्छ खुश्क हवा में चिरायते, काटी हुई रई और कूटू की गंध मिली होती है। रात घिरने से दो घड़ी पहले तक भी नमी का एहसास नहीं होता। किसान फ़सल काटने को ऐसे ही मौसम की कामना करते हैं।

ठीक ऐसे ही दिन तूला प्रांत के चेर्न ज़िले में मैं जंगली मुर्गों का शिकार करने निकला था। मैंने काफ़ी सारी चिड़ियाँ मार ली थीं और मेरा भरा हुआ झोला बेरहमी से कंधे में गड़ रहा था। साँझ ढल रही थी, अस्त हो गए सूरज की किरणें आकाश को आलोकित नहीं कर रही थीं, पर तो भी वह उजला था, गोधूलि की शीतल आभा में धुंधलका गहराता हुआ बढ़ रहा था। तब कहीं जाकर मैंने घर लौटने का निश्चय किया। तेज़-तेज़ क़दम भरते हुए मैंने झाड़ियों का मैदान पार किया, टीले पर चढ़ गया, लेकिन मेरी आशा के विपरीत न तो दाईं ओर बलूत कुंज था, न दूर कहीं छोटा सा सफ़ेद गिरजा नज़र आ रहा था, यहाँ तो बिल्कुल ही दूसरी अनजान जगह थी। नीचे एक संकरी घाटी फैली हुई थी और बिल्कुल सामने तेज़ ढलान पर एस्प वृक्षों का घना झुरमुट चला गया था। मैं हैरान-परेशान सा रुक गया, इधर-उधर नज़र दौड़ाई। "धत् तेरे की! मैं तो बिल्कुल दूसरी जगह पहुँच गयाः ज़्यादा दाईं ओर को चला आया," मैंने सोचा। अपनी ग़ल्ती पर चकित होता हुआ मैं फुर्ती से टीले पर से उतर गया। तत्क्षण अप्रिय सी, थिर सीलन ने मुझे घेर लिया, मानों मैं किसी तहख़ाने में उतर आया था। घाटी के तल पर घनी ऊँची घास की एकदम गीली, सफ़ेद, सपाट चादर बिछी हुई थी, उस पर चलते हुए मन काँपता था। मैंने जल्दी-जल्दी घाटी पार की और बाएँ घूमता

हुआ एस्प वन के बगल-बगल चलने लगा। एस्पों के ऊँघते शिखरों के ऊपर चमगादड़ उड़ने लगे थे। अस्पष्ट से निर्मल आकाश में फरफराते वे रहस्यमयी जीव से लगते थे। आकाश में काफ़ी ऊँचे एक छोटा बाज़ अपने घोंसले पर लौटने की जल्दी में तेजी से सीधा उड़ता चला गया। मैं सोच रहा थाः "बस, उस छोर तक पहुँचते ही आगे सड़क होगी। हाँ, पाँच फ़र्लांग का चक्कर तो लग ही गया!"

आखिर मैं जंगल के उस छोर तक पहुँच गया, पर वहाँ कोई सड़क न थी। मेरे सामने नीची-नीची झाड़ियाँ फैली हुई थीं और उनके पीछे दूर-दूर तक वीरान खेत दिख रहा था। मैं फिर रुक गया। "क्या माजरा है?.. आख़िर कहाँ आ पहुँचा मैं?" मैं यह याद करने लगा कि मैं दिन भर किधर-किधर गया था। "अरे हाँ, ये तो पराख़िनों की झाड़ियाँ हैं।" आखिर मेरे मुँह से निकला। "और वह वहाँ सिन्देयेव कुंज होना चाहिए... कैसे आ गया मैं इतनी दूर?... अजीब बात है! अब फिर दाएँ चलना चाहिए।"

मैं झाड़ियों के बीच से दाईं ओर को बढ़ने लगा। उधर रात घिरती आ रही थी, काली घटा की तरह बढ़ती जा रही थी। लगता था कि साँझ की धुंध के साथ चारों ओर से अँधेरा उठ रहा है और ऊपर से भी छितर रहा है। मैं किसी पगडंडी पर जा पहुँचा। पगडंडी पर घास उग आई थी, न जाने कब से कोई उस पर नहीं चला था। ध्यान से आगे देखता हुआ मैं उस पर चलने लगा। चारों ओर सब कुछ तेज़ी से काला पड़ता जा रहा था और निस्तब्धता छाती जा रही थी–बस कभी-कभार कोई बटेर चहक उठता था। अपने कोमल पंखों पर निश्शब्द उड़ता कोई निशाचर पंछी मुझसे टकराता-टकराता बचा और सहमा सा एक ओर को अँधेरे में ग़ोता लगा गया। मैंने झाड़ियों का मैदान पार कर लिया और खेत में मेड़-मेड़ चलने लगा। अब दूर की चीज़ें मुश्किल से ही नज़र आ रही थीं : ओर धुधला सफ़ेद खेत फैला हुआ था। उसके पार उमड़ता-घुमड़ता अँधेरा पल-पल बढ़ता जा रहा था। थिर हो चली हवा में मेरे क़दमों की दबी-दबी आवाज़ गूँज रही थी। धूमिल पड़ गया आकाश फिर से नीला हो रहा था, पर यह रात की नीलिमा थी। तारे छिटक गए, झिलमिलाने लगे।

जिसे मैं कुंज समझे था, वह काला, गोलाकार टीला निकला। "आखिर कहाँ आ

गया मैं? मैंने फिर से कहा, तीसरी बार थमा और प्रश्न भरी दृष्टि से अपने अंग्रेज नस्ल के पीले-चितकबरे कुत्ते दिआन्का की ओर देखा, जो बिलाशक सभी चौपायों में सबसे अक्लमंद है। पर सबसे अक्लमंद कुत्ते ने बस दुम हिला दी, अपनी थकी-थकी आँखें झपकाईं और कोई काम की सलाह नहीं दी। मुझे उसके सामने शर्म आई और मैं यकायक आगे बढ़ चला, मानो सहसा मुझे यह पता चल गया हो कि किधर जाना चाहिए। टीले का चक्कर काटकर उसे पार किया और एक घाटी में जा पहुँचा, जो अधिक गहरी न थी। यहाँ चारों ओर ज़मीन जुती हुई थी। मुझे एक अजीब सी अनुभूति हुई।

यह घाटी विशाल कड़ाहे की शक्ल की थी, हल्की सी ढलान नीचे को चली गई थी। और नीचे तलहटी में कुछ बड़े-बड़े सफ़ेद पत्थर सीधे-सतर खड़े थे, लगता था मानो वे किसी गुप्त मंत्रणा के लिए वहाँ रेंग आए हों। घाटी में सब कुछ इतना अचल और मूक था, इतना सपाट था, उसके ऊपर आसमान ऐसा मनहूस सा लगता था कि मेरा कलेज़ा बैठ गया। पत्थरों के बीच कोई जीव धीमी सी, दयनीय आवाज़ में चिचियाया। मैंने

जल्दी-जल्दी टीले पर लौटने की की। अभी तक मैंने घर का रास्ता ढूँढ लेने की आशा न खोई थी, पर अब मैं समझ गया कि बिल्कुल भटक गया हूँ। चारों ओर घने अंधकार में डूबी जगहों को पहचानने की कोई कोशिश न करते हुए मैं तारों को देखता नाक की सीध में अललटप्पू चल दिया... कोई आधे घंटे तक मैं यों ही मुश्किल से पैर घसीटता चलता रहा। लगता था कि पहले कभी भी मैं ऐसे निर्जन इलाके में नहीं आया; कहीं कोई आग नहीं टिमटिमा रही थी, कोई आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। एक के बाद एक हल्की ढलान वाले टीले आ रहे थे, खेतों के सिलसिले का कोई अंत न था, झाड़ियाँ अचानक ऐन नाक के सामने ज़मीन में से निकल पड़ती थीं। मैं चलता

जा रहा था ओर सोच रहा था कि बस अब कहीं लेटकर रात काट लूँ, पर तभी मैंने अपने आप को एक अथाह गर्त के किनारे पाया।

आगे बढ़ा पाँव मैंने जल्दी से पीछे हटा लिया। रात के प्रायः अभेद्य अंधकार में मुझे बहुत नीचे एक विशाल मैदान दिखा। चौड़ी नदी ने उसे अर्द्धवृत में घेर रखा था, जो मेरे से दूर को जा रहा था। जब-तब नज़रों से टकराती नदी की अस्पष्ट सी, फ़ौलादी झिलमिल से उसके बहाव का आभास हो रहा था। जिस टीले पर मैं खड़ा था वह एकदम सीधी कगार के रूप में नीचे चला गया था। घनी नीली रिक्तता में टीले की विशाल काली आकृति अलग से दिख रही थी। मेरे ठीक नीचे कगार और मैदान के बीच एक कोना सा बन गया था। यहाँ नदी प्रायः थिर ही थी, काले दर्पण सी। टीले की खड़ी ढलान की ओट में नदी के पास एक दूसरे के निकट ही दो अलावो की लाल लपटें उठ रही थीं, धुआँ छोड़ रही थीं। उनके इर्द-गिर्द लोग हिलडुल रहे थे, परछाइयाँ मँडरा रही थीं, कभी-कभी छोटे से–घुँघराले बालों वाले सिर का अगला हिस्सा चमक उठता था।

अब मैं पहचान गया कि मैं कहाँ आ भटका हूँ। यह चरागाह हमारे इलाके में 'बेझिन चरागाह' के नाम से जानी जाती है। पर घर लौटने की अब हिम्मत न रही थी, वह भी रात में। थकावट के मारे खड़ा न हुआ जा रहा था। मैंने तय किया कि अलावों के पास जाता हूँ। और इन लोगों के साथ बची-खुची रात काट लेता हूँ। मेरा ख्याल था कि ये लोग मवेशियों को हाट में ले जानेवाले चरवाहे हैं। मैं सही-सलामत नीचे उतर गया, पर जिस आखिरी टहनी को मैंने पकड़ रखा था, उसे हाथ से छोड़ भी न पाया था कि दो बड़े-बड़े, झबरीले, सफ़ेद कुत्ते गुस्से से भौंकते हुए मेरी ओर लपके। अलावों के पास से बच्चों की खनकती आवाज़े आईं। दो-तीन लड़के तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने चिल्लाकर पूछाः "कौन है?" मैंने जवाब दिया और वे दौड़े-दौड़े मेरी ओर आए, कुत्तों को हटा लिया, जो मेरे दिआनका को आया देखकर खास तौर पर हैरान थे। मैं लड़कों के पास चला गया।

अलाव के इर्द-गिर्द बैठे लोगों को चरवाहा समझना मेरी भूल थी। ये तो पड़ोस के गाँव के लड़के थे; जो घोड़ों के झुंड की रखवाली कर रहे थे। गर्मियों के दिनों में

हमारे यहाँ घोड़ों को रात में ही चरागाहों में छोड़ा जाता है: दिन में मक्खियाँ और कुकुरमछियाँ उन्हें तंग कर मारें। गोधूलि की वेला में घोड़ों को चरागाह में ले जाना और प्रभात वेला में वापिस हाँक लाना–किसान बच्चों के लिए इससे बढ़कर ख़ुशी का काम और कोई नहीं। नंगे सिर, भेड़ की खाल के पुराने कोट कसे वे मरियल सी, पर तेज़ तर्रार घोड़ो पर सवारी गाँठते हैं। चिल्लाते हुए, हू-हा करते, टाँगें-बाहें हिलाते, ऊँचे-ऊँचे उछलते वे घोड़ों को दौड़ा ले जाते हैं; खिलखिलाकर हँसते जाते हैं। सड़क पर अपने पीछे धूल से पीले सूतने छोड़ते जाते हैं; घोड़ों की टापें दूर तक सुनाई देती है, कनौमियाँ खड़ी किये वे दौड़ते जाते हैं; आगे-आगे अपनी दुम हवा में उठाए निरंतर चाल बदलता कोई झबरा सुरंग घोड़ा दौड़ता जाता है, जिसकी अयाल में गोखरू उलझे होते हैं।

मैंने लड़कों को बताया कि मैं भटक गया हूँ और उनके पास बैठ गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ से आया हूँ, फिर चुप हो गए, एक ओर को हट गए। हमने कुछ देर बातें कीं। मैं एक बूची झाड़ी के नीचे लेट गया और इधर-उधर देखने लगा। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था: अलावों के इर्द-गिर्द लाल दमक का घेरा थरथरा रहा था और अँधेरे से टकराकर मानो ठिठक जाता था; कभी-कभार कोई लपट तेज़ हो उठती और इस घेरे की परिधि के बाहर प्रकाश की द्रुत कौंध फैल जाती; कोई अग्नि जिह्वा पतली-पतली सूखी टहनियों को चाटती और तुरंत ही विलीन हो जाती; और कभी टेढ़ी-मेढ़ी लंबी-लंबी परछाइयाँ अलावों तक बढ़ आतीं: प्रकाश अंधकार से जूझ रहा था। कभी-कभी लौ धीमी पड़ जाती और प्रकाश का घेरा सिकुड़ जाता, आगे बढ़ आये अंधकार में से सहसा किसी घोड़े का सिर–धारीदार कुम्मैत या नुकरा, भावहीन आँखें गाड़कर हमारी ओर देखता, लंबी घास तेज़ी से चरता और फिर से झुककर तुरंत ही ओझल हो जाता। बस घोड़े के घास चरने और फुफकारने की ही आवाज सुनाई देती रहती। उजली जगह में से यह देखना कठिन होता है कि अंधकार में क्या हो रहा है, अतः लगता था कि आसपास सब कुछ काले परदे में छिपा हुआ है। हाँ दूर, क्षितिज के पास टीले और जंगल धुँधले-धुँधले धब्बों के रूप में दिख रहे थे। काला, तारों से भरा, ओर-छोर विहीन आकाश अपनी सारी रहस्यमय गरिमा में हमारे सिरों के ऊपर

छाया हुआ था। रूस की गर्मियों की रात की विशिष्ट, अभिभूत कर देनेवाली और ताज़गी भरी सुगंध फेफड़ों में भर रही थी और उससे हृदय में मीठी कसक उठ रही थी। चारों ओर कहीं कोई ध्वनि, कोई स्वर न था। बस कभी-कभार ही पास की नदी में किसी बड़ी मछली के उछलने से जोर से छपछपाहट होती और दौड़ आई लहर से तट के सरकंड़ों में हुई हल्की सी आहट सुनाई देती... सिर्फ़ अलाव ही धीरे-धीरे तड़तड़ करते जल रहे थे।

लड़कें इन अलावों के इर्द-गिर्द ही बैठे थे और वे दो कुत्ते भी बैठे थे, जो मुझे काट खाने को इतने उतावले हो उठे थे। काफ़ी देर तक वे मेरी उपस्थिति को शांति से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और उनींदे से आँखें मिचमिचाते और तिरछी नज़रों से अलावों की ओर देखते हुए रह-रहकर गुर्रा उठते—मानो उनका असाधारण अभिमान उन्हें कचोटता। पहले वे गुर्राते रहे, फिर धीरे-धीरे किकियाने लगे, मानो इस बात पर खेद प्रकट कर रहे हों कि अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकते। कुल पाँच लड़के थे वहाँ : फ़ेद्या, पब्लूशा, इल्यूशा, कोस्त्या और वान्या। (उनकी बातचीत से मुझे उनके नाम पता चले और अब मैं तुरंत ही पाठकों को उनसे परिचित कराना चाहता हूँ।)

लड़को में सबसे बड़ा था फ़ेद्या। वह लगभग चौदह बरस का लगता था। सुघड़ शरीर, सुंदर, किंतु कुछ छोटे-छोटे नाक-नक्श, सुनहरी घुँघराले बाल और होठों पर सदा छाई रहनेवाली मुस्कान, जिसमें प्रसन्नता भी थी और अन्यमनस्कता भी। उसके हाव-भाव से साफ़ लगता था कि वह किसी खाते-पीते घर का है और ज़रूरत से मजबूर होकर नहीं, बल्कि मौज करने यहाँ चरागाह में आया है। वह चटकीली छींट की, पीली गोटवाली कमीज़ पहने था। नया छोटा कोट उसने ओढ़ रखा था, जो उसके संकरे कंधों पर खिसक-खिसक जाता था। नीली सी पेटी में कंघा लटक रहा था। पिंडलियों तक ऊँचे बूट जो वह पहने था, उसके अपने ही थे, उसके पिता के नहीं। दूसरे लड़के पब्लूशा के काले बाल उलझे-पुलझे थे, आँखें सुरमई, कल्ले चौड़े, चेहरा पीला सा, चेचक के दागों से छलनी, बड़ा लेकिन तराशवाला मुँह। कुल जमा उसका सिर काफ़ी बड़ा था, जैसा कि हमारे यहाँ कहा जाता है—हाँडी जैसा, बदन ठिगना और बेढ़ब सा था। यह तो मानना पड़ेगा कि लड़का देखने में सुंदर नहीं था, पर फिर भी

वह मुझे अच्छा लगा: वह एकदम सीधे देखता था और उसकी आँखों में बुद्धिमत्ता का भाव था। उसकी आवाज़ से भी शक्ति का आभास होता था। अपनी वेश-भूषा पर वह गर्व नहीं कर सकता था: घर की कती-बुनी कमीज़ और पैबंद लगी पतलून-यही था उसका सारा पहनावा। तीसरे बालक इल्यूशा का चेहरा ख़ासा मामूली सा था-तम्बूतरा, चुंधी सी आँखें, और तोते सी नाक। उसके चेहरे पर किसी ठस, चिड़चिड़ी बेचैनी की छाप थी। होंठ मिंचे हुए थे और उनमें ज़रा भी गति न थी, भौंहें भी सिकुड़ी की सिकुड़ी ही थी—मानो आलाव से वह बराबर चुंधिया रहा हो। उसके हल्के पयाल के रंग के, प्रायः सफ़ेद से बालों की लटें चिपकी सी फ़ैल्ट टोपी के नीचे से जहाँ-तहाँ निकली हुई थी। वह रह-रहकर दोनों हाथों से अपनी टोपी को कानों पर खींचता था। उसकी टाँगों और पाँवों पर मोजों की जगह कपड़े की चौड़ी पट्टियाँ लिपटी हुई थीं और उनके ऊपर वह छाल की जूतियाँ पहने था। मोटी डोरी तीन बार उसकी कमर पर लिपटी हुई थी और उसके काले रंग के झगले को अच्छी तरह सँभाले हुए थी। पब्लूशा और वह देखने में बारह साल से ज्यादा के नहीं लगते थे। चौथा, कोस्त्या कोई दस बरस का था। उसके विचारमग्न और उदास चेहरे को देखकर मुझे कौतुहल हो रहा था। उसका सारा चेहरा छोटा सा, दुबला-पतला, नीचे को नुकीला था—गिलहरी जैसा; होंठ मुश्किल से नज़र आते थे; किंतु उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें और उनकी तरल चमक एक विचित्र सा प्रभाव डालती थीं। वे मानों कोई ऐसी बात कहना चाहती थी, जिसे ज़बान, कम से कम उसकी ज़बान, शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ थी। वह नाटे कद और कमज़ोर बदन का था। कपड़े भी वह मामूली से ही पहने थे। आख़िरी लड़के वान्या पर तो पहले मेरी नज़र ही नहीं पड़ी: वह एक चौड़ी सी चटाई तले आराम से ज़मीन पर पड़ा हुआ था, कभी-कभार ही वह अपना घुँघराले बालों वाला सिर चटाई के नीचे से बाहर निकालता था। इस लड़के की उम्र सात बरस से ज़्यादा न थी।

सो, मैं एक ओर को झाड़ी तले लेटा हुआ चुपके-चुपके लड़कों को देख रहा था। एक अलाव पर छोटा सा पतीला लटक रहा था, उसमें आलू उबल रहे थे। पब्लूशा उन पर नज़र रख रहा था। घुटनों के बल खड़ा होकर वह उबलते पानी में खपची डालकर

देख रहा था। फ़ेद्या कोहनी टेककर लेटा हुआ था, उसके कोट का दामन फैला हुआ था। इल्यूशा कोस्त्या के पास बैठा था और पहले की भाँति भौहें सिकोड़े हुए था। कोस्त्या सिर एक ओर को झुकाए कहीं दूर नज़रें गड़ाए हुए था। वान्या अपनी चटाई तले हिले-डुले बिना लेटा हुआ था। मैंने सोने का बहाना किया। धीरे-धीरे लड़कों की बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू हो गया।

पहले उन्होंने कुछ इधर-उधर की बातें कीं, कल के काम की, घोड़ों की; और फिर सहसा फ़ेद्या ने मानो बीच में छूट गई बातचीत का सिलसिला फिर से पकड़ते हुए इल्यूशा से कहा:

"अच्छा तो, तूने घर-भुतने को देखा था?"

"नहीं देखा तो नहीं, वह दिखाई देता भी नहीं," इल्यूशा ने फटी-फटी, मरियल सी आवाज़ में जवाब दिया। उसका स्वर चेहरे के हाव-भाव से एकदम मेल खाता था। "हाँ, उसकी आवाज़ सुनी थी... सो भी मैंने अकेले ने नहीं।"

"कहाँ डेरा डाले है वह?" पब्लूशा ने पूछा।

"पुरानी मिल में।"

"अरे! तू क्या मिल में जाता है?"

"और नहीं तो क्या। मेरा भाई अब्यूश्का और मैं कागज़ चिकनाते हैं।"

"वाह रे, कामगार बन गया।"

"अच्छा तो कैसे तूने आवाज़ सुनी थी?" फ़ेद्या ने पूछा।

"अभी बताता हूँ। हुआ यह कि अव्यूश्का और मैं, और वह फ़्योदर मिखेयेव्स्की, ओर इवाश्का कसोइ, साथ में वह लाल टीले वाला इवाश्का भी, और इवाश्का सुख़ारूकव और दूसरें भी लड़के, बस पूरी पाली के ही लड़के थे हम; सो हमें मिल में रात काटनी पड़ी, काटनी तो क्या पड़ी, वह हमारा मुखिया नज़ारव बोला कि भाई लड़को कल काम बहुत है, तो तुम क्या बेकार अब घर जाओगे, मत जाओ। सो हम वहीं रुक गए। सब लेट गए पास-पास ही और तभी अव्यूश्का कहने लगा कि भाइयों अगर कहीं यहाँ घर-भुतना आ गया तो?... और बस उसके इतना कहने की देर थी कि हमारे ऊपर कोई चलने लगा, हम लोग तो नीचे की मंजिल में लेटे हुए थे,

और वह ऊपर डग नाप रहा था, जहाँ चक्के हैं। वह ऐसे टहल रहा था और तख़्ते तो बस उसके बोझ से सारे झुके जा रहे थे, चरमरा रहे थे; हमारे सिरों के ऊपर से होता हुआ वह गुज़र गया और अचानक चक्के पर जोर से पानी गिरने लगा; चक्का खड़खड़ाया, खड़खड़ाया और लो चल दिया; और पानी के डट्टे तो बंद थे। हम हैरान: यह किसने डट्टे उठा दिए कि पानी बहने लगा; चक्का थोड़ी देर घूमा और फिर रुक गया। अब वह ऊपर के दरवाज़े की ओर चल दिया और जीने से उतरने लगा। सीढ़ियाँ तो जैसे उसके बोझ से कराह उठी... आखिर वह हमारे दरवाजे तक आ गया, थोड़ी देर खड़ा रहा, खड़ा रहा और फिर दरवाज़ा एकदम सारा का सारा खुल गया। हमारी तो बस सिट्टी-पिट्टी गुम! पर देखा तो कुछ है ही नहीं... और अचानक देखते क्या है कि एक टंकी का जाल हिलने लगा, फिर वह उठा, उठता गया, फिर नीचे हो गया, हवा में यों घूमा जैसे कोई उसे फटक रहा हो और फिर अपनी जगह जा टिका। अब एक दूसरी टंकी के पास एक काँटा अपनी खूंटी से उतर गया और फिर खूंटी पर जा लटका; फिर मानो कोई दरवाजे की ओर चल दिया और अचानक ऐसे ज़ोर से कोई खाँसा-खँखारा, बड़ी भारी-भारी आवाज़ में। हम सब तो बस एक दूसरे से चिपक गए, सिर दुबकाने लगे... तौबा, कितना डर गए थे हम!"

"ओहो!" पव्लूशा बोला। "पर वह खाँसा क्यों?"

"पता नहीं, शायद सीलन थी, इसलिए।"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

"क्यों, आलू उबल गए क्या?" फ़्रेद्या ने पूछा।

पब्लूशा ने छपटी से छूकर देखे।

"नहीं, अभी कच्चे हैं... बाप रे, कैसे ज़ोर का छपाका हुआ,' नदी की ओर मुँह मोड़कर वह बोला, "ज़रूर कोई बड़ी मछली है... वह देखो, तारा टूटा!"

"लो, मैं एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाता हूँ।" कोस्त्या अपनी पतली सी आवाज़ में बोलने लगा। "सुनो भाइयो, अभी उस दिन बापू ने मेरे सामने यह बात सुनाई थी।"

"अच्छा तो सुना," फ़्रेद्या ने मानो आज्ञा देते हुए कहा।

"गव्रीला को तो तुम जानते ही हो, वही जो गाँव में बढ़ई है।"

"हाँ, जानते हैं।"

"पता है क्यों वह हमेशा इतना उदास, खोया-खोया रहता है, कभी हँसता-बोलता नहीं, पता है? सुनो, मैं बताता हूँ : बापू बता रहे थे कि एक दिन वह गया जी जंगल में, जंगली अखरोट बीनने। गया जो जंगल में, तो वहाँ रास्ता भूल गया; न जाने कहाँ जा पहुँचा, कहाँ भटक गया। इधर भी जाए, उधर भी जाए, पर नहीं रास्ता मिले ही नहीं। ऊपर से रात घिरती आ रही थी। लो जी, आखिर वह एक पेड़ तले बैठ गया। सोचने लगा कि चलो, सुबह होने तक यहीं बैठ लेता हूँ। सो जी, वह बैठा-बैठा ऊँघाने लगा और सो गया। अचानक सुनता क्या है कि कोई उसे पुकार रहा है। इधर-उधर देखा पर कोई है, ही नहीं। वह फिर ऊँघने लगा। फिर वही पुकार सुनाई दी। वह फिर ताकने लगा, आख़िर जी देखता क्या है कि उसके सामने पेड़ की डाली पर जलपरी बैठी है, झूलती जा रही है, उसे बुला रही है और खुद हँसी से लोट-पोट हो रही है. .. अब, भैया जी, रात तो चाँदनी थी, ऐसी चाँदनी कि बस एक-एक पत्ता दिखाई देता था। सो, लो जी वह उसको बुलाए जाए, और खुद ऐसी गोरी-चिट्टी डाली पर बैठी हुई थी, जैसे डेस मछली या रोच या फिर वो कार्प मछली भी यों चाँदी सी चमकती है. .. अब, भैया जी, गव्रीला बढ़ई के होश हवास गुम, उधर वो जलपरी उसे इशारे किए जाए, हँस-हँसकर बुलाती जाए। गव्रीला तो उठकर चल ही दिया था, पर यह समझो कि भगवान ने उसके दिल में डाल दी : उसने अपनी छाती पर सलीब का निशान

बना ही लिया... पता है कितनी मुश्किल हुई थी उसे ऐसा करने में, वह कह रहा था : हाथ तो जैसे पत्थर का हो गया था, उठता ही न था। ओफ़, कमबख़्त, चल!.. बस भैया जी, जैसे ही उसने सलीब का निशान बनाया जलपरी का हँसना बंद, और लगी वह फूट-फूटकर रोने... रोती जाए, रोती जाए, बालों से आँखे पोंछती जाए, और बाल तो उसके हरे-हरे थे, जैसे तुम्हारा सन। सो जी, गव्रीला उसे देखता रहा, देखता रहा और आख़िर पूछ बैठा : 'अरी, जलपरी, तू रोती क्यों है? जलपरी ने भी उसे तुरंत जवाब दिया, बोली : 'अगर तू सलीब का निशान न बनाता, तो आख़िरी दिन तक मौज से मेरे साथ रहता; रोना मुझे इसी बात का है, इसीलिए मैं दुखी हूँ कि तूने सलीब का निशान बनाया, पर मैं अकेली दुखी नहीं रहूँगी; जा, तू भी मरते दम तक अब दुखी रहेगा।' लो जी, बस इतना कहकर वह तो ग़ायब हो गई और गव्रीला को भी फ़ौरन घर का रास्ता समझ में आ गया... बस, तभी से वह इतना उदास-उदास रहने लगा।"

"हूँ, देखो तो!" कुछ देर की ख़ामोशी के बाद फ़ेद्या बोला। "कैसे कोई यह भुतनी-वुतनी ईसाई आत्मा को भ्रष्ट कर सकती है–आख़िर गव्रीला ने उसका कहना तो माना नहीं था?"

"बस ऐसे ही होता है।" कोस्त्या बोला। "गव्रीला भी कहे था कि उसकी आवाज़ इतनी पतली और दयनीय थी जैसे कोई मेंढकी हो।"

"तेरे बापू ने खुद यह बात सुनाई थी क्या?" फ़ेद्या पूछे जा रहा था।

"हाँ। मैं बिस्तर में लेटा था, सब कुछ सुन रहा था।"

"गज़ब की बात है! उसे भला काहे की उदासी!... हाँ, भई, ज़रूर वह जलपरी को भा गया होगा, तभी तो वह उसे बुला रही थी।"

"अजी हाँ, भा गया!" इल्यूशा बोल पड़ा। " ज़रूर भाएगा! वह तो उसे गुदगुदाकर मार डालना चाहती थी, समझे। इन जलपरियों का काम ही यही है।"

"यहाँ भी तो जलपरियाँ होंगी," फ़ेद्या ने कहा।

"नहीं, यह जगह साफ़ है," कोस्त्या ने जवाब दिया। "बस यह नदी ही पास है, और तो कुछ नहीं।"

सब चुप हो गए। अचानक कहीं दूर सुदीर्घ, बिल्कुल विलाप जैसी चीख गूँजी। यह

रात्रि की उन रहस्यमयी ध्वनियों में से एक थी, जो गहन नीरवता में सहसा उत्पन्न हो जाती हैं, हवा में उठती हैं, गुंजामयमान होती रहती हैं और फिर धीरे-धीरे विलीन होती हुई दूर चली जाती हैं। कान लगाएँ तो लगता है कोई आवाज़ नहीं है, पर एक हल्की सी गूँज गूँजती रहती है।

ऐसा लगता है मानो ऐन आसमान के पास किसी ने बहुत ही लंबी चीख छोड़ी और फिर जंगल में कोई उसके जवाब में तीखी आवाज़ में खिलखिलाकर हँसा और नदी के वक्ष पर सरसरी सी फुफकार बढ़ गई। लड़कों ने एक दूसरे की ओर देखा, सिहर उठे...

"ईसा हमारे साथ है!" इल्यूशा बुदबुदाया।

"वाह रे, कबूतरो!" पव्लूशा चिल्लाया। "क्यों काँप उठे? देखो, आलू उबल गए।" बस लड़के पतीले के पास आ गए और गरम-गरम भाप छोड़ते आलू खाने लगे; सिर्फ़ वान्या ही हिला-डुला नहीं। "अरे, खाएगा नहीं क्या?" पव्लूशा ने पूछा।

पर वह अपनी चटाई के नीचे से नहीं निकला। पतीला जल्दी ही ख़ाली हो गया।

"अच्छा, तुमने सुना, अभी उस दिन हमारे यहाँ वर्नावित्सी में क्या हुआ?" इल्यूशा ने बात छेड़ी।

"बाँध के पास?" फेद्या ने पूछा।

"हाँ, हाँ, वहीं, टूटे बाँध के पास। वह है असली भुतहा जगह, और इतनी वीरान। चारों ओर खड्ड, गड्ढे , निचानें हैं और इतने साँप हैं वहाँ..."

"अच्छा, बता तो क्या हुआ वहाँ?"

"सुनो, क्या हुआ वहाँ। तुझे फेद्या शायद पता नहीं, पर वहाँ एक आदमी डूब गया था, बहुत पहले जब पानी गहरा था। तो उसकी क़ब्र भी वही पर है। वैसे तो अब क़ब्र बस ज़रा सी ही दिखती है, एक ढूह सा ही रह गया है... तो हुआ यह कि कुछ दिन पहले कारिंदे ने येर्मील शिकारिये को बुलाया। वह येर्मील है न, जो शिकारी कुत्तों को पालता है। कुत्ते तो उसके सब मर गए हैं, पता नहीं क्यों उसके पास रहते ही नहीं, कभी नहीं रहे, वैसे काम वह अपना खूब जानता है। अच्छा तो कारिंदे ने येर्मील को बुलाया और बोला कि जा डाक ले आ। हमारे यहाँ हमेशा येर्मील डाक लेने जाता है।

सो येर्मील शहर चला गया, बस वहाँ उसने कुछ देर-वेर कर दी, वापस जब चला, तो पिए हुए था। घोड़े पर वह आ रहा था, रात पड़ गई, चाँदनी रात... तो आया येर्मील बाँध पर से, बस ऐसा रास्ता निकला उसका। लो जी, चला आ रहा येर्मील शिकारिया और देखता क्या है कि जहाँ वो क़ब्र है न, वहीं ढूह पर एक मेमना टहल रहा है–ऐसा घुँघराले रेशो वाला, सफ़ेद-सफ़ेद। सो येर्मील ने सोचा क्यों न मैं इसे उठा लूँ। क्या यहाँ बेकार जाएगा। बस वह घोड़े से उतरा और मेमने को गोद में उठा लिया। मेमना भी चुपके से गोद में आ गया। बस उसे उठाकर येर्मील घोड़े की ओर चल दिया घोड़ा लगा थूथनी फेरने, फुफकारने; पर खैर उसने घोड़े को फटकारा और मेमने को लेकर उस पर सवार हो गया, आगे चल दिया। मेमने को उसने अपने सामने रखा हुआ था। वह मेमने की ओर देखे मेमना भी सीधा उसकी आँखों में आँखें डालकर देखता जाए। बस डर गया जी येर्मील शिकारियाः याद नहीं पड़ता कि कभी कोई मेमना यों ताकता हो; पर खैर कोई बात नहीं; वह मेमने को सहलाने लगा, बोला : 'पुच-पुच-पुच!' लो जी मेमने ने भी दाँत निकाले और बोल पड़ा : 'पुच-पुच-पुच'...

कहानी कहनेवाले के मुँह से यह यह आखिरी शब्द निकला भी न था कि सहसा दोनों कुत्ते एकबारगी उठ खड़े हुए, ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए अलाव से दूर लपके और अँधेरे में ओझल हो गए। सब लड़के डर गए, वान्या झट से अपनी चटाई तले से निकल आया, पव्लूशा चिल्लाता हुआ कुत्तों के पीछे दौड़ा। उनके भौंकने की आवाज़ दूर होती जा रही थी... बौखला उठे घोड़ों के झुंड की बेचैनी भरी भगदड़ की आवाज़ आई। पव्लूशा ज़ोर से चिल्लायाः "भूरे! झूचका!" कुछ क्षण बाद कुत्तों का भौकना बंद हो गया; पव्लूशा की आवाज़ अब दूर से आ रही थी... कुछ और क्षण बीते; लड़के हैरान-परेशान से एक दूसरे की ओर देख रहे थे, मानो यह प्रतीक्षा करते हुए कि क्या होगा... सहसा तेज़ी से दौड़ते हुए घोड़े की टापें सुनाई दीं, घोड़ा अलाव के बिल्कुल पास ही झटके से रुक गया, उसका अयाल पकड़कर पव्लूशा फुर्ती से नीचे कूद पड़ा। दोनों कुत्ते प्रकाश के घेरे में उछल आए और तुरंत ही अपनी लाल-लाल जीभें बाहर निकाले बैठ गए।

"क्या हुआ? क्या था?" लड़कों ने पूछा।

"कुछ नहीं," पावेल ने जवाब दिया और घोड़े की ओर हाथ हिलाया। "ऐसे ही कुत्तों को कुछ खटका हुआ होगा। मैंने सोचा था, भेड़िया आ गया," लापरवाही से उसने बात पूरी की। वह पूरी छाती फुलाकर साँस ले रहा था।

मैं बरबस विमुग्ध सा पव्लूशा को देखने लगा। इस क्षण वह बहुत अच्छा लग रहा था। उसका असुंदर मुखड़ा घोड़ा दौड़ाने से दमक उठा था और उससे बहादुरी और दृढ़ता झलकती थीं। हाथ में एक संटी तक भी लिए बिना, रात को वह अकेले ही, बेझिझक भेड़िये का सामना करने लपका था। "कितना प्यारा लड़का है!" उसे देखते हुए मैं सोच रहा था।

"देखे हैं क्या यहाँ भेड़िए?" डरपोक कोस्त्या ने पूछा।

"यहाँ हमेशा बहुत होते हैं," पव्लूशा ने जवाब दिया। "पर वे तो जाड़ों में ही तंग करते हैं।"

वह फिर से अलाव के पास बैठ गया। ज़मीन पर बैठते हुए उसने एक कुत्ते के झबरीले सिर पर हाथ रख लिया। कुत्ता खुश हो गया, बड़ी देर तक उसने सिर नहीं घुमाया और तिरछी नज़र से कृतज्ञता और गर्व के साथ पव्लूशा को देखता रहा।

वान्या फिर से चटाई के नीचे दुबक गया।

"हाँ तो, इल्यूशा, कैसी डरावनी बातें तू सुना रहा था।," फिर से फ़ेद्या ने बातों का सिलसिला शुरू किया, सम्पन्न घर का होने के नाते उसे लड़कों की बातचीत में अगुवाई करनी पड़ती थी। (खुद वह कम ही बोलता था, मानो अपना मान बनाए रखने के लिए)। "इधर ये कुत्ते भी न जाने क्यों भौंक पड़े। सचमुच ही मैंने सुना था कि तुम्हारी वह जगह भूतों का अड्डा है।"

"वर्नावित्सी?... और नहीं तो क्या। पूरा अड्डा ही है! कहते हैं वहाँ कई बार बूढ़े

मालिक को देखा है-स्वर्गीय मालिक को। लंबा कफ़्तान पहने घूमता रहता है, आहें भरता जाता है और ज़मीन पर कुछ ढूँढ़ता रहता है। सुना है एक बार त्रफ़ीमिच बाबा ने उसे वहाँ देखा था, पूछने लगा : 'मालिक क्या ढूँढ़ रहे हैं?''

''पूछा था उसने?'' आश्चर्यचकित फ़ेद्या बीच में बोल उठा।

''हाँ, पूछा था।''

''बड़ा बहादुर है तब तो वह... तो क्या जवाब दिया उसने।''

''बोला, **तोड़ू बूटी*** ढूँढ़ रहा हूँ। ऐसे खोखली आवाज़ में कहा : तोड़ू-बूटी। मालिक, तोड़ू-बूटी का क्या करोगे?' बोला : 'क़ब्र का बोझ नहीं सहा जाता। बाहर निकलना चाहता हूँ, बाहर...''
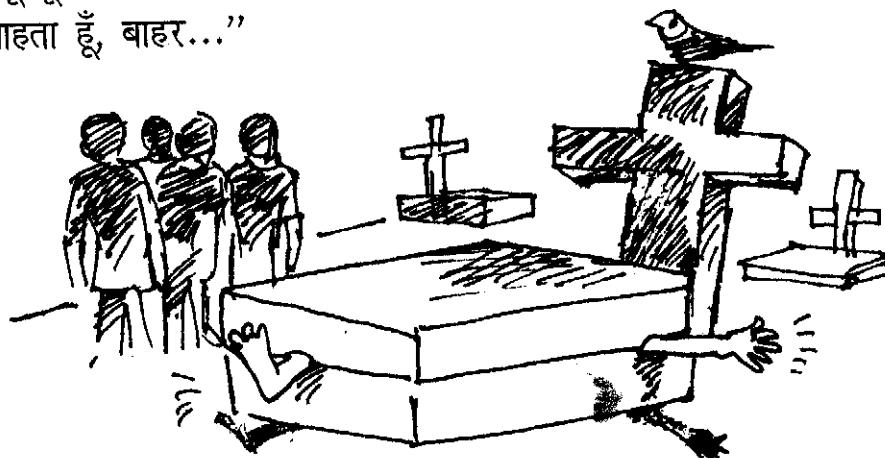
''ज़रा देखो तो थोड़ा जिया था क्या! और जीना चाहता है,'' फ़ेद्या ने कहा।

''क्या अजूबा है!'' कोस्त्या बोला। ''मैं तो सोचता था कि शनिवार वाले श्राद्ध को ही मरे हुओं को देखा जा सकता है।''

''मरे हुओं को तो कभी भी देखा जा सकता है,'' इल्यूशा ने विश्वासपूर्वक बात का सूत्र पकड़ा। मैं देख रहा था कि गाँव के अंधविश्वासों के बारे में वही सबसे ज़्यादा जानता है। ''शनिवार वाले श्राद्ध को तो तुम जीते हुओं को भी देख सकते हो, जिनकी उस साल मरने की बारी है। बस रात को गिरजे के ओसारे पर बैठ जाओ और सड़क की ओर देखते रहो। बस जिनकी मरने की बारी है, वे आते दिखेंगे। हमारे यहाँ पिछले

* तोड़ बूटी-लोक विश्वास के अनुसार ऐसी बूटी, जिससे सभी कुंडे, ताले टूट जाते हैं। -सं.

साल बुढ़िया उल्याना देखने गई थी।"

"देखा उसने किसी को?" कोस्त्या ने कौतूहल से पूछा।

"और नहीं तो क्या। पहले तो वह बड़ी देर बैठी रही। कुछ दिखा नहीं, न कुछ सुनाई दिया.. बस लगता था कहीं एक कुत्ता रह-रहकर भौंक उठता था... अचानक देखती क्या है कि सड़क पर एक लड़का चला आ रहा है। सिर्फ़ एक कमीज़ पहने। वह ध्यान से देखने लगी–इवाश्का फ़ेदासेयेव चला आ रहा था..."

"वही, जो वसंत में मर गया?" फ़ेद्या ने बात काटी।

"हाँ, वही। चलता आ रहा था और सिर नहीं उठा रहा था... पर उल्याना बुढ़िया उसे पहचान गई... फिर देखती है कि एक बुढ़िया चली आ रही है... वह ध्यान से देखने लगी देखती जाए, देखती जाए... हे भगवान!–यह तो वह ख़ुद ही चली आ रही थी।"

"सच?" फ़ेद्या ने पूछा।

"हाँ, सचमुच वही थी।"

"पर वह तो अभी मरी नहीं?"

"तो क्या, साल तो अभी पूरा नहीं हुआ। उसकी हालत तो देखो : जैसे-तैसे प्राण अटके हुए हैं।"

फिर से सब शान्त हो गए। पव्लूशा ने मुट्ठी भर सूखी टहनियाँ आग में डाली। सहसा तेज़ उठी लौ में वे एकदम काली-काली दिखीं, तड़तड़ाने, धुआँ छोड़ने और ऐंठने लगीं, जले सिरे ऊपर को उठ-उठ जाते थे। थरथराती हुई चमक चारों ओर फैली, ख़ास तौर पर ऊपर को। सहसा न जाने कहाँ से एक सफ़ेद कबूतर प्रकाश की परिधि में उड़ आया, सहमा-सहमा सा एक ही जगह पर मँडराया, गरम दमक से चमचमा उठा और पंख फड़फड़ाता हुआ ग़ायब हो गया।

"लगता है भटक गया है," पव्लूशा बोला, "अब उड़ता जाएगा, जब तक कहीं टकरा नहीं जाएगा। जहाँ टकराएगा बस वहीं रात काटेगा।

"पव्लूशा, हो सकता है, यह कोई पवित्र आत्मा स्वर्ग को जा रही हो? हैं?" कोस्त्या ने कहा।

पाव्लूशा ने एक और मुट्ठी टहनियों की आग पर फेंकी।

"हो सकता है," आख़िर उसने जवाब दिया।

"अच्छा, पव्लूशा, यह तो बता, तुम्हारे यहाँ शलामवों में भी वो दैवी **चमत्कार*** हुआ था?" फ़ेद्या ने फिर से बात छेड़ी।

"जब वो सूरज दिखाई देना बंद हो गया था? क्यों नहीं।"

"ख़ूब डर गए होगे तुम लोग तो?"

"हाँ, हम अकेले थोड़े ही डरे थे। हमारा मालिक भी हमें पहले से बताता रहा था कि हमें दैवी चमत्कार देखने को मिलेगा, पर जब अँधेरा हुआ, तो सुना है, खुद ही ऐसा डर गया कि पूछो मत और वो जो उसकी बावर्चिन है न, उसने तो जैसे ही अँधेरा हुआ उठाकर सारी हाडियाँ-वाडियाँ तोड़ डालीं। बोली : 'अब कौन खाएगा! कयामत का दिन आ गया।' बस सारा खाना चूल्हे में गिर गया। हमारे गाँव में तो भैया ऐसी-ऐसी अफ़वाहें फैल गईं कि अब सफ़ेद भेड़िये धरती को रौंदेंगे, लोगों को फाड़कर खा जाएँगे, आसमान से ख़ूनी पंछी झपटेंगे, और नहीं तो त्रीश्का ही प्रकट होगा।

"कौन त्रीश्का?" कोस्त्या ने पूछा।

"तुझे पता नहीं?" इल्यूशा बड़े जोश से बोल उठा। "अरे वाह रे, किस गाँव का है तू, जो तुझे इतना भी नहीं पता कि त्रीश्का कौन है? घर के घोंघचू ही हैं तुम्हारे गाँव वाले, निरे घोंघचू। अरे, त्रीश्का ऐसा अद्भुत आदमी होगा जो एक दिन आएगा और वो अद्भुत आदमी आएगा ऐसा कि कोई उसे पकड़ नहीं सकेगा और न उसका

* ग्रामीण लोग सूर्य ग्रहण को यही कहते थे। –ले.

कुछ बिगाड़ा जा सकेगा : ऐसा अद्भुत आदमी होगा। अब मान लो किसान उसे पकड़ना चाहेंगे : डंडे, लाठियाँ लेके उसे पकड़ने निकलेंगे, घेर लेंगे, और वह उनकी आँखों में ऐसी धूल झोंकेगा कि वे ऐ दूसरे को ही मार डालेंगे। उसे मान लो, जेल में बंद कर देंगे, वह पीने को पानी माँगेगा, उसी में डुबकी लगा लेगा और बस ग़ायब हो जाएगा। उसे बेड़ियों, ज़ंजीरों में कस देंगे, वह ताली बजाएगा ओर वे सब वहीं गिर जाएँगी। बस यह त्रीश्का गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमता फिरेगा और भैया रे, ऐसा धूर्त, ऐसा कुटिल होगा यह त्रीश्का कि सभी भले लोगों को, ईसा के भक्तों को भटकाएगा. .. और कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा...ऐसा अद्भुत, धूर्त आदमी होगा वह।''

''हाँ, ऐसा ही होगा वह, पव्लूशा ने धीर-गंभीर स्वर में अपनी बात जारी रखी। ''बस उसी का इंतजार था हमारे यहाँ। बड़े-बड़े कह रहे थे कि जैसे ही वे दैवी चमत्कार लगेगा, तभी त्रीश्का आ पहुँचेगा। तो लो जी, चमत्कार भी हो गया। और सब लोग घरों से निकल आए, खेत में जमा हो गए, देखने लगे कि क्या होता है। हमारे यहाँ तो, तुम्हें पता ही है, जगह खुली है। अचानक देखते क्या हैं कि उधर टीले की ओर से कोई आदमी आ रहा है, ऐसा कमाल का, अजीबोग़रीब सिर उसका। सब चिल्ला पड़ेः 'हाय त्रीश्का आ गया! हाय त्रीश्का आ गया! और भाग खड़े हुए! हमारे गाँव का मुखिया नाले में जा कूदा, उसकी घरवाली फाटक में ही फँस गई, चीखने-चिल्लाने लगी, अपने कुत्ते को ही इतना डरा दिया कि वह ज़ंजीर तोड़कर बाड़ के पार कूदा और दुम दबाकर जंगल में भाग गया। और वो कूज्का का बाप है न, दराफ़ेइच, वह जई के खेत में दुबक गया, और लगा बटेर की तरह चीखनेः 'शायद, पंछी पर तो हत्यारा हाथ न ही उठाए।' ओर ऐसी भगदड़ मची कि पूछो मत! आदमी वो हमारे गाँव का ही था ववीला, जो लकड़ी के पीपे बनाता है। उसने मटका ख़रीदा था और खाली मटका सिर पर डाले आ रहा था।''

सब लड़के हँसने लगे और फिर पल भर को चुप हो गए, जैसा कि प्रायः खुली हवा में बतिया रहे लोगों के साथ होता है। मैंने चारो ओर नज़र दौड़ाई : भव्य रात थी; साँझ ढले की ओसीली ताज़गी की जगह अब मध्य रात्रि की ख़ुश्क गरमाहट ने ले ली थी। नींद में डूबे खेतों पर रात का मुलायम परदा पड़ा हुआ था और उसके

उठने में, प्रभात की पहली सरसराहट, पहली चहक होने में, ओस की पहली बूँदों की झिलमिलाहट होने में अभी काफ़ी देर थी। आकाश पर चाँद नहीं था, उसके देर से निकलने के दिन थे। अनगिनत सुनहरे तारे टिमटिमाते हुए मंथर गति से आकाश गंगा की ओर बढ़ते प्रतीत होते थे। और सचमुच ही उन्हें निहारते हुए लगता था मानो हम स्वयं पृथ्वी की अंतहीन, भँवर सी गति का अनुभव कर रहे हों। सहसा नदी पर एक के बाद एक दो बार अजीब सी, दयनीय चीख गूँजी और फिर कुछ क्षण पश्चात दूर से आई...

कोस्त्या काँप उठा... "क्या है यह ?"

"बगुला चीखा है," पव्लूशा ने शान्त भाव से कहा।

"बगुला," कोस्त्या ने दोहराया। "पव्लूशा, कल शाम को मैंने क्या सुना था, शायद तुझे पता हो।..."

"क्या सुना था तूने?"

"अभी बताता हूँ। मैं कामेन्नया ग्रिदा से शाश्किने जा रहा था; पहले तो हेज़ल की झाड़ियों के झुरमुट में चलता रहा, फिर वो जो छोटी सी चरागाह है न उसमें चलने लगा, पता है, जहाँ वह खोह की ओर को रास्ता है, वहाँ, तुझे पता होगा, एक बड़ा गड्ढा है, जिसमें बसंत में पिघली बर्फ का पानी भरा रहता है। गड्ढा सारा नरकट के झाड़-झँखाड़ से भरा है। बस इसी गड्ढे के पास से मैं जा रहा था कि भैया अचानक गड्ढे में कोई कराह उठा, ऐसी दर्द भरी आवाज़ थी: "आ-आ-ह-आ-आ-ह..." मैं तो भैया रे बुरी तरह से डर गया: साँझ का वकत और वो आवाज़ ऐसी दर्दीली थी। लगता था, बस मैं खुद भी रो पडूँगा। क्या हो सकता था यह? हैं?"

"इस गड्ढे में पारसाल चोरों ने बनपाल अकीम को डुबो दिया था," पव्लूशा ने राय दी। "हो सकता है उसकी आत्मा बिलख रही हो..."

"हे भगवान," कोस्त्या की बड़ी-बड़ी आँखें भय और विस्मय से और भी फैल गईं। "मुझे तो पता ही नहीं था कि अकीम को वहाँ डुबोया था; नहीं तो मैं डर के मारे मर ही जाता।"

"कहते हैं, ऐसे छोटे-छोटे मेंढक भी होते हैं," पव्लूशा ने अपनी बात जारी रखी।

"वे भी बोलते हैं तो रोने लगते हैं।"

"मेंढक? नहीं, वो मेंढक नहीं थे... मेंढक कैसे ...(नदी पर बगुले ने फिर चीत्कार किया।) ओफ़ कमबखत!" कोस्त्या के मुँह से बरबस निकला। "जैसे बन-भुतना चीख रहा हो।"

"बन-भूतना नहीं चीखता, वह तो गूँगा है," इल्यूशा ने बात पकड़ी, "वह तो बस तालियाँ बजाता है..."

"तुमने देखा है क्या बन-भुतने को?" फ़ेद्या ने चुटकी लेते हुए पूछा।

"नहीं, देखा नहीं। और भगवान न करे, कभी सामना हो। पर दूसरों ने देखा है। अभी थोड़े दिन पहले हमारे गाँव के एक आदमी को उसने भटकाया था; बड़ी देर तक वह जंगल में भटकता रहा, बस एक ही मैदान के चक्कर काटता रहा... मुश्किल से दिन चढ़े कहीं घर पहुँचा।"

"तो क्या, देखा था उसने?"

"हाँ, देखा था। कहता था, बहुत बड़ा है वह, अंधियाला, ऐसा चिथड़ों में लिपटा सा और पेड़ के पीछे छिपता जाता है, ठीक तरह से कुछ नहीं दिखता, जैसे कि बस चाँदनी से छिप रहा हो और अपनी इत्ती बड़ी-बड़ी आँखें झपकाता जाता है, घूरता जाता है..."

"ओह! थू!" थोड़ा काँपते और कंधे बिचकाते हुए फ़ेद्या ने दुतकारा।

"पता नहीं क्यों यह गंदगी धरती पर फैली हुई है?" पावेल ने कहा।

"देख, बुरा मत कह, कहीं सुन न ले," इल्यूशा बोला।

फिर से चुप्पी छा गई।

"देखो भाइयों, देखो, सहसा वान्या का बाल स्वर सुनाई दिया। "देखो तो भगवान के प्यारे-प्यारे तारों को, मधुमक्खियों से मँडरा रहे हैं।"

उसने चटाई के नीचे से अपना ताज़गी भरा मुखड़ा बाहर निकाला, मुट्ठी पर ठोड़ी रखी ओर धीरे-धीरे अपनी मृदु आँखें ऊपर उठाईं। सब लड़कों की आँखें आसमान की ओर उठ गई और फिर देर तक वहीं टिकी रहीं।

"वान्या,"फ़ेद्या दुलार से बोला, "तेरी बहन अन्यूत्का ठीक-ठाक है न?"

"हाँ, ठीक है," वान्या ने थोड़ा तुतलाते हुए जवाब दिया।

"उससे कहियो-हमारे यहाँ क्यों नहीं आती?"

"पता नहीं।"

"कह देना कि आया करे।"

"कह दूँगा।"

"उस से कहियो मैं उसे मिठाई दूँगा।"

"मुझे देगा?"

"तुझे भी दे दूँगा।"

वान्या ने एक उसाँस भरी।

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए। तुम उसे ही दे देना, वह इतनी भली है।"

वान्या ने फिर से अपना सिर ज़मीन पर टिका लिया। पव्लूशा खड़ा हो गया और ख़ाली पतीला उठाकर चल दिया।

"कहाँ चला?" फ़ेद्या ने पूछा।

"नदी पर, पानी लेने : प्यास लगी है।"

कुत्ते भी उठकर उसके पीछे चल दिए।

"देख, नदी में गिर मत जाइयो!" इल्यूशा ने चिल्लाकर कहा।

"गिरेगा क्यों?" फ़ेद्या बोला। "सँभलकर रहेगा।"

"हुँ, सँभलकर रहेगा। कुछ भी हो सकता है : वह झुकेगा, पानी भरने लगेगा और जल-भुतना उसका हाथ पकड़कर खींच लेगा। फिर लोग कहेंगे कि जी वह तो पानी में गिर गया... गिरा-विरा क्या? वो देखो सरकंडों में पहुँच गया," आहट सुनते हुए उसने कहा।

सचमुच ही सरकंडों में ऐसी सरसराहट हुई, जैसे कोई उन्हें हाथ से हटा रहा हो।

"अच्छा, क्या यह सच है कि अकुलीना बावली उसी दिन से हुई, जब वह पानी

में गिरी थी?'' कोस्त्या ने पूछा।

''हाँ, तभी से। देखो तो क्या हाल हो गया। सुना है, पहले बड़ी सुंदर थी। जल-भुतने ने उसका दिमाग़ ख़राब कर दिया। उसे यह उम्मीद नहीं होगी कि अकुलीना को इतनी जल्दी निकाल लेंगे। बस उसने उसे अपने यहाँ, नदी के तलपर, ख़राब कर दिया।''

(इस अकुलीना को मैंने अपनी आँखों कई बार था। चीथडों में लिपटी, बेहद दुबली, कोयले सा काला चेहरा, आँखें एकदम भावशून्य, हर वक़्त खीसें निपोड़े वह कही सड़क पर घंटों एक ही जगह खड़ी रहती है, अपनी हड़ियल बाँहें छाती पर बाँधे और धीरे-धीरे पैर बदलती डोलती रहती है, जैसे पिंजड़े में बंद कोई जंगली जानवर हो। उसे कुछ भी कहो वह कुछ नहीं समझती, बस कभी-कभी ठहाके मारके हँसने लगती है।)

''सुना है,'' कोस्त्या कह रहा था, ''अकुलीना इसीलिए नदी में जा कूदी थी कि उसके प्रेमी ने उसे धोखा दिया था।''

''हाँ, इसीलिए।''

''याद है, एक वास्या था?'' कोस्त्या ने दुखद स्वर में कहा।

''कौन वास्या?'' फ़ेद्या ने पूछा।

''वही, जो डूब गया था,'' कोस्त्या ने जवाब दिया। ''इसी नदी में। कितना अच्छा लड़का था! ओह, कितना अच्छा! और माँ उसकी, फ़ेक्लीस्ता, उसे कितना प्यार करती थी, अपने वास्या को! उसे जैसे पता था कि बेटे की पानी में ही मौत आएगी। गर्मियों में हम सब बच्चे नदी में नहाने जाते, तो वह भी हमारे साथ हो लेता, माँ उसकी डर के मारे पीली पड़ जाती। दूसरी लुगाइयों को कुछ परवाह नहीं, वे अपने कपड़े धोने की लकड़ी की लंबी चिलमचियाँ उठाए चली जातीं। पर, वो फ़ेक्लीस्ता चिलमची ज़मीन पर रख देती और पुकारने लगती : 'लौट आ, मेरे लाल! मत जा, मेरी आँखों के तारे! भगवान जाने डूब भी कैसे गया। तट पर ही तो खेल रहा था, माँ भी वहीं थी, कटी घास के ढेर लगा रही थी : अचानक उसने सुना कि कोई पानी में बुलबुले छोड़ रहा है, पलटकर देखा तो बस वास्या की टोपी ही पानी पर तैर रही थी। बस तभी से

फ़ेक्लीस्ता की अकल मारी गई है। बेटा जहाँ डूबा था न, उसी जगह आकर लेट जाती है, और भैया रे, लेटकर बस वही गान छेड़ देती है–याद है, वास्या वो गाना गाया करता था? बस वही गान वह भी छेड़ती है और खुद रोती जाती है, भगवान के आगे अपना दुखड़ा रोती है...''

''लो, पव्लूशा आ रहा है,'' फ़ेद्या ने कहा।

पानी से भरा पतीला हाथ में लिए पव्लूशा अलाव के पास आया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला :

''क्यों, भाइयों, मामला तो गड़बड़ है।''

''क्या हुआ?'' कोस्त्या ने चट से पूछा।

''मैंने वास्या की आवाज सुनी है।''

सब एकदम सिहर उठे।

''अरे, अरे, यह क्या कहता है, तू?'' कोस्त्या जल्दी-जल्दी बुदबुदया।

भगवान कसम। मैं पानी की ओर झुकने लगा, तभी सुनता क्या हूँ, कोई वास्या की आवाज़ में मुझे पुकार रहा है और जैसे पानी के नीचे से आवाज़ आ रही है : 'पव्लूशा, ऐ पव्लूशा, इधर आ।' मैं तुरंत पीछे हट गया। हाँ, पानी भर लिया।''

''हे भगवान! हे भगवान!'' लड़कों ने सलीब का निशान बनाते हुए कहा।

''यह तो जल-भुतने ने तुझे बुलाया होगा,'' फ़ेद्या ने कहा। ''हम अभी-अभी वास्या की ही बाते कर रहे थे।''

''ओह, यह तो बुरा सगुन है,'' इल्यूशा ने धीरे-धीरे बोलते हुए कहा।

''कोई बात नहीं, हुआ करे,'' पव्लूशा ने दृढ़तापूर्वक कहा और बैठ गया। ''जो भाग में लिखा है होकर रहेगा।''

लड़के शान्त हो गए। पव्लूशा के शब्दों का उन पर गहरा असर पड़ा लगता था। वे मानो सोने की तैयारी करते हुए आग के सामने पसरने लगे।

''अरे, यह क्या?'' सहसा कोस्त्या ने उठकर पूछा।

पव्लूशा ने कान लगाकर सुना।

''चाहे उड़ रहे हैं, चहक रहे हैं।''

"कहाँ उड़े जा रहे हैं?"
"उन देशों को, जहाँ कहते हैं कभी जाड़ा नहीं पड़ता।"
"क्या ऐसे देश भी हैं?"
"हाँ, हैं।"
"दूर हैं?"
"बहुत दूर, गरम समुद्रों के पार।"
कोस्त्या ने उसाँस भरी और आँखें मूँद ली।

लड़कों के पास आए मुझे तीन घंटे हो चले थे। आखिर चाँद निकल आया था। मैं तो उसे तुरंत देख ही नहीं पाया : इतना छोटा और पतला था वह। चंद्र विहीन रात पहले की ही भाँति राजसी वैभव के साथ फैली हुई थी... हाँ, अब कई तारे, जो थोड़ी देर पहले आकाश में बहुत ऊँचे दिख रहे थे, धरती के अँधेरे सिरे की ओर झुक रहे थे; चारों ओर पूर्णनीरवता थी, जैसी कि केवल रात्रि के अंतिम पहर में ही होती है, सब कुछ गहरी, अटूट नींद में डूबा हुआ था, पौ फटने से पहले की नींद में। हवा में फैली गंधें अब क्षीण पड़ रही थीं, मानो फिर से नमी आती जा रही थी... गर्मियों की रातें कितनी छोटी होती हैं!...बुझते अलाव के साथ-साथ लड़कों की बातचीत भी खत्म होती जा रही थी... कुत्ते तो ऊँघ ही रहे थे; तारों के झिलमिलाते मंद प्रकाश में जहाँ तक मुझे दीख पड़ता था, घोड़े भी सिर लटकाए सो रहे थे... अलस बेसुधी ने मुझे घेर लिया और मेरी आँख लग गई।

ताज़ी हवा का झोका मेरे चेहरे को छूता हुआ बढ़ गया। मैंने आँखें खोलीं : पौ फट रही थी। ऊषा की लाली अभी कहीं नहीं छाई थी, पर पूरब में उजाला हो चला था: चारों ओर सब कुछ दिखने लगा, धुँधला-धुँधला ही, पर दिख रहा था। हल्का सुरमई आकाश उजला होता जा रहा था, उसमें ठंडा, नीला रंग भरता जा रहा था। तारे कहीं टिमटिमाते और ओझल हो जाते, धरती का दामन गीला हो गया था, पत्तियों पर ओस थीं। कहीं-कहीं से जीवन की ध्वनियाँ और स्वर आने लगे और प्रभात की बयार फरफराती हुई धरती पर बहने लगी। उसके मधुर स्पर्श से मेरे शरीर में हल्का सा मीठा-मीठा कंपन हुआ। मैं झटपट उठा और लड़कों के पास गया। धीमे-धीमे सुलगते अलाव के इर्द-गिर्द वे बेसुध सोए पड़े थे। केवल पव्लूशा ही आधा उठा और ध्यान से मेरी ओर देखने लगा।

मैंने सिर हिलाकर उससे विदा ली और नदी के किनारे-किनारे चल पड़ा। नदी से भाप उठ रही थी। मैं कोई डेढ़ मील ही गया हूँगा कि मेरे चारों ओर से–भीगी चरागाह में, और दूर, सामने–जंगल से जंगल तक फैले हरे-हरे टीलों पर, और पीछे–धूल भरी लंबी सड़क पर, झिलमिलाती, लाल झाड़ियों पर और झीने पड़ते कोहरे तले लज्जा से अपना नीला वक्ष उघाड़ती नदी पर नया आलोक बरसने लगा, पहले लाल, फिर रक्तिम और फिर सुनहरी... हर चीज़ स्पंदित हो रही थी, जाग रही थी, गा रही थी, कलरव कर रही थी, चहक रही थी। ओस की बड़ी-बड़ी बूँदें सर्वत्र हीरों सी चमक उठीं; सामने से गिरजे के घंटे के सुस्पष्ट, मानो प्रभात की शीतलता से निखरे स्वर हवा में तैरते आए और फिर सहसा थकावट मिटा चुके घोड़ों का झुंड मेरे पास से गुज़र गया। मेरे परिचित लड़के ही उन्हें हाँके लिए जा रहे थे।

मुझे खेदपूर्वक इतना और कहना पड़ रहा है कि उसी वर्ष पव्लूशा नहीं रहा। वह डूबा नहीं, घोड़े से गिरकर मर गया। दुख की बात है : लड़का बड़ा अच्छा था!